मानवाधिकार आयोग को शक्तिशाली बनाया जाना चाहिए

वर्ष 2018 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के 25 वर्ष पूरे हो रहे हैं। आयोग का गठन 1993 के मानवाधिकार सुरक्षा अधिनियम के आधार पर किया गया था। अपने गठन की शुरूआत से ही आयोग विवादों में घिरा रहा है। संसद के आगामी शीतकालीन सत्र में सरकार ने इस पर संशोधन प्रस्ताव प्रस्तुत करने की योजना बनाई है।

गठन पर एक नजर

1993 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने मानवाधिकार पर पेरिस सिद्धांतों को आत्मसात किया था। तत्पश्चात् प्रायः प्रत्येक देश में मानवाधिकार संस्था का गठन किया गया। प्रत्येक पाँच वर्ष में इन संस्थाओं को संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद् से मान्यता का नवीनीकरण कराना होता है। अन्य क्षेत्रों की तरह मानवाधिकार के क्षेत्र में भी ग्रेडिंग दी जाती है। अगर भारत को ए-ग्रेड मिल जाता है, तो उसे संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद् एवं अन्य अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की नीति-निर्धारण प्रक्रिया में स्थान मिल सकेगा।

भारत के मानवाधिकार आयोग में राजनीतिक हस्तक्षेप को देखते हुए अंतरराष्ट्रीय परिषद् ने 2016 में इसकी ग्रेडिंग कम कर दी थी। परन्तु सरकार की आयोग के उत्थान के प्रति प्रतिबद्धता को देखते हुए 2017 में इसे ए ग्रेड प्रदान कर दिया गया था। 2018 का संशोधन अधिनियम सरकार द्वारा दिखाई गई प्रतिबद्धता का ही प्रतिफल है। वास्तव में यह अधिनियम आयोग के स्वरूप को विस्तार तो देता है, परन्तु आयोग में ठोस परिवर्तन लाने की दिशा में कोई प्रयास करता दिखाई नहीं देता।

आयोग की कमियाँ

- आयोग में सदस्यों की चयन प्रक्रिया ही त्रुटिपूर्ण है। इसके अध्यक्ष और सदस्यों का चुनाव सत्तासीन पार्टी करती है। सबसे पहले तो चयन समिति के सदस्यों को अलग-अलग क्षेत्रों से लाया जाना चाहिए।

दूसरे आयोग के सदस्यों की चयन प्रक्रिया भी बड़ी अस्पष्ट है। अक्सर तो सरकार इसकी रिक्तियों का खुलासा ही नहीं करती है। चुने जाने वाले सदस्यों की योग्यता का भी कोई निश्चित पैमाना नहीं है। यही कारण है कि इसके किए जाने वाले चुनाव विवादास्पद रहे हैं। सरकार को चाहिए कि वह चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता को बढ़ाए।

- आयोग में न्यायिक प्रतिनिधित्व की प्रधानता रही है। इसके पीछे तर्क यह दिया जाता है कि चूंकि आयोग में न्यायिक पक्ष की महत्वपूर्ण भूमिका है, अतः यह उचित है। लेकिन वास्तव में तो आयोग के 10 कार्यकलापों में से मात्र एक ही न्यायिक क्षेत्र से जुड़ा होता है।

न्यायिक प्रतिनिधित्व के पक्ष में एक तर्क यह भी दिया जाता है कि यह सरकार के लिए विश्वसनीय है। इसके बावजूद आयोग की अतिरिक्त निधि की मांग का लंबित पड़े रहना, समझ से परे की बात है।

- संशोधन अधिनियम के माध्यम से सरकार मानवाधिकार के जिन लक्ष्यों को प्राप्त करना चाहती है, वह समाज के प्रतिष्ठित नागरिक और ऐसे शिक्षाविदों को शामिल कर प्राप्त किया जा सकता है, जिनका मानवाधिकार के विकास में पर्याप्त योगदान रहा हो। इसके लिए जमीनी स्तर पर कार्य कर रही संस्थाओं या व्यक्तियों तक पहुँचा जाना चाहिए।
- मानवाधिकारों के मामलों में की जाने वाली जांच-पड़ताल में भी सुधार की बहुत आवश्यकता है। इन मामलों में जिन पुलिसकर्मियों को प्रतिनियुक्ति पर भेजा जाता है, उनकी निष्ठा अपने मूल कैडर के साथ ही जुड़ी रहती है। निष्ठा के अभाव में काम करते हुए इन अधिकारियों को अक्सर कानून प्रवर्तन अधिकारी द्वारा दोषी ठहरा दिया जाता है। इंटेलीजेंस ब्यूरो के अधिकारियों को इस प्रकार की जाँच-पड़ताल में शामिल करके स्थिति और भी बिगड़ जाती है। अतः राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को अपने ही अधिकारियों की सख्त आवश्यकता है, जिससे निष्पक्ष जाँच-पड़ताल की जा सके।
- कुछ स्थितियों में जहाँ केन्द्र और राज्य सरकारें मानवाधिकार रक्षा अधिनियम के अनुभाग 17 के अंतर्गत कोई कदम नहीं उठातीं, वहाँ राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को स्वतंत्र जाँच का अधिकार प्राप्त है। परन्तु आयोग ने शायद ही कभी अपनी इस शक्ति का इस्तेमाल किया है।

यही कारण है कि उच्चतम न्यायालय ने आयोग को 'दंतविहीन बाघ' की उपाधि दी थी। अब आयोग को शक्ति प्रदान करने का सारा दारोमदार सरकार पर है।

'द इंडियन एक्सप्रेस' में प्रकाशित ए.पी.जितेन्द्र रेड्डी के लेख पर आधारित। 11 अक्टूबर, 2018